श्रीविश्वनाथो जयति ।

॥ धर्म्मसोपान ॥

श्रीस्वामी दयानन्द विरचित ।

श्रीभारतधर्म्म सिण्डिकेट लिमिटेडके शास्त्र प्रकाश
विभाग द्वारा प्रकाशित ।

काशी ।

षष्ठ आवृत्ति ।

श्रीगोपालचन्द्र चक्रवर्ती द्वारा भारतधर्म प्रेस,
बनारस सिटीमें मुद्रित ।

सन् १९२७ ई०

 [मूल्य ।)

श्रीविश्वनाथो जयति ।

धर्म्मसोपान ।

श्रीस्वामी दयानन्द सम्पादित ।

भारतधर्म्म सिण्डिकेट लिमिटेड
के
शास्त्रप्रकाशकविभाग द्वारा प्रकाशित ।
काशी ।

षष्ठ आवृत्ति ।

श्रीगोपालचन्द्र चक्रवर्ती द्वारा भारतधर्म प्रेस,
बनारस सिटीमें मुद्रित ।
सन् १९२७ ई० ।

 [मूल्य ।) चार आना ।

सूचना ।

श्रीभारतधर्म्म महामण्डलके विषयमें तथा आर्यमहिला हितकारणी महापरिषद, हिन्दी मासिक 'आर्यमहिला' पत्रिका, वाराणसी विद्यापरिषद, संस्कृत पाक्षिक 'सूर्योदयः' पत्र, समाज हितकारीकोष, विश्वनाथ अन्नपूर्णा दानभाण्डार, आर्यधर्म प्रचारिणीसभा, सर्वधर्मसदन आदिके विषयमें जो सज्जन कुछ पूछना चाहें वे निम्न लिखित पतेसे पत्र व्यवहार करें ।

प्रधानाध्यक्ष—

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल

प्रधान कार्य्यालय,

जगत्‌गंज, वनारस ।

श्रीभारतधर्म महामण्डल तथा भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड द्वारा प्रकाशित पुस्तकोंके विषयमें अथवा हिन्दी साप्ताहिक 'भारतधर्म', अंग्रेजी मासिक 'महाशक्ति', भारतधर्म वंक, भारतधर्म प्रेस, महामण्डल डाइरेक्टरी आदिके विषयमें पूछना हो तो नीचे लिखे पतेसे पत्र व्यवहार करें ।

सेक्रेटरी,—

भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड,

स्टेशन रोड, वनारस सिटी ।

प्रस्तावना ।

——:※:——

चिन्ताशील पुरुषोंका यही दृढ़ सिद्धान्त है कि, धर्म्मप्राण आर्य्यजातिमें जबतक अपने सनातनधर्म्मके नियमानुसार धार्मिक-शिक्षाका प्रचार बालकपनसे ही नहीं होगा तबतक सनातनधर्म्मावलम्बियोंकी उन्नति होना असम्भव है। बहु-शताब्दिसे धर्म्मशिक्षाकी रीति हमारे समाजसे उठ गई है। अस्तु, जबसे हमारे समाजमेंसे धार्म्मिकशिक्षाका लोप होने लगा है, तबसे ही इस आदिगुरु जातिका अधःपतन होना प्रारम्भ हुआ है। यद्यपि नवीन शिक्षा प्रणालीके प्रचार होनेसे देशकाल और साधारण लौकिक-ज्ञानकी वृद्धिमें बहुत कुछ सहायता प्राप्त हुई है, तथापि उस शिक्षा प्रणालीमें भी धार्मिकशिक्षाका अभाव रहनेसे उसके द्वारा आध्यात्मिक उन्नति कुछ भी नहीं हो सकी है। इसी कारण हिन्दुजातिकी विराट् धर्म्मसभा श्रीभारतधर्म्म महामण्डलके शास्त्रप्रकाशक विभाग द्वारा छोटे छोटे बालकोंकी धर्म्मशिक्षाके लिये "सदाचारसोपान" "धर्मप्रश्नोत्तरी" आदि पुस्तकें और ब्रह्मचर्य्य-आश्रमकी पुनः प्रतिष्ठाके लिये "ब्रह्मचर्य्य-सोपान" आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उसी क्रमके अनुसार बालकोंकी धर्म्मशिक्षाके लिये सदा-चार सोपान तथा धर्मप्रश्नोत्तरीके बाद तृतीय पाठ्य पुस्तक

रूपसे यह "धर्म्मसोपान" नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है। इसमें सनातनधर्म्मके प्रधान प्रधान अङ्ग और रहस्योंका सरल भाषामें वर्णन किया गया है, जिसके द्वारा सनातन-धर्म्माङ्गों और धर्म्मभावोंका साधारण ज्ञान विद्यार्थियोंको भलीभाँति हो सकेगा। शिक्षक महाशयोंका कर्तव्य है कि, वे पुस्तककी रचनाप्रणाली और पुस्तकमें दी हुई टिप्पणियोंपर विशेष ध्यान देकर पुस्तकमें वर्णित धार्म्मिक विषयोंसे सम्बन्ध रखनेवाली अन्यान्य आवश्यकीय बातोंको भी समझा दिया करें। और साथ ही साथ इसका अवश्य विचार रक्खें कि, गुरु और पितृमातृ-सेवा, ईश्वर-भक्ति, वेद और शास्त्रमें श्रद्धा और सदा-चार पालन आदि सद्वृत्तियोंका विकाश उनमें हो। ये सब विषय जिससे विद्यार्थियोंमें उनके कर्मोंके द्वारा प्रकाशित हों, ऐसा सदा यत्न करें।

इस पुस्तकका स्वत्वाधिकार, दीनदरिद्र दुखियोंकी सहा-यताके अर्थ श्रीमहामण्डल द्वारा स्थापित श्रीविश्वनाथ अन्नपूर्णा दानभाण्डारको अर्पण किया गया ॥ इति ॥

निवेदक—

काशीधाम
जन्माष्टमी
सं० १७८४ विक्रमीय

श्रीकवीन्द्रनारायण सिंह
अध्यक्ष
श्रीभारतधर्ममहामण्डल।

धर्म्मसोपान

की

विषयानुक्रमणिका ।

——:०:——

ओं नमो भगवते वासुदेवाय।

धर्म्मसोपान।

———०:*:०———

मंगलाचरण।

यं पृथग्धर्म्मचरणाः पृथग्धर्म्मफलैषिणः।
पृथग्धर्म्मैः समर्चन्ति तस्मै धर्म्मात्मने नमः॥

———:०:———

प्रार्थना।

(वसन्ततिलका।)

(१)

देवादिदेव! जगदीश! दयालु! दाता।
कोई न दृष्टि तुझसा जग बीच आता।
तेरी अपार महिमा नहिं जा बखानी,
हारे अनन्त नर नाग सुरेश ज्ञानी॥

(२)

संसार रूप रचना रचके दिखाई,
ऐसी अपूर्व सुषमा * उपमा न पाई।
सामर्थ्य कौन तुझसी नर मूढ़ राखै?
कैसे कुलाल † गरिमा ‡ घट मूक § भाखै?

---

* शोभा। † कुम्हार। ‡ बड़ाई। § गूंगा।

(३)

कोई तुझे सगुण सुन्दर जानता है,
कोई अनादि अज * अव्यय † मानता है ।
निर्लेप रूप सबमें तव भासता है,
सम्बन्ध व्योमवत ‡ तू निज राखता है ॥

(४)

तूने कृपालु ! नरका तन जो दिया है,
हे विश्वनाथ ! उपकार बड़ा किया है ।
योनी असंख्य, पर मानुषकी बड़ाई—
वेदादि शास्त्र सबने सब भाँति गाई ॥

(५)

पाया मनुष्य तनु किन्तु तुझे न पाया,
मेरी वृथा अब हुई यह दिव्य काया ।
फूले फले पर न जो फलको पकावे,
वो वृक्ष निष्फल कभी मनको न भावे ॥

(६)

वे गीध वानर भले, जिनकी भलाई—
हे देव ! आदिकविने § सबको सुनाई ।
धिक्कार कल्पतरुको फल जो न देवे,
है धन्य आम्र फल जो निज शीश लेवे ॥

(७)

सर्वज्ञ ! देव ! घटकी सब जानता तू,
बातें समस्त मनकी पहचानता तू ।

---

* जिसका जन्म नहीं । † जो बिगड़ता नहीं । ‡ आकाशके समान । § वाल्मीकि ।

क्या मैं कहूं फिर भला अब बात मेरी,
संकल्प पूर्ण तब होय लगे न देरी ॥
(८)
हो धर्म्मराज्य सब ठौर, न लोग कोई—
पापी रहें, जगतमें नहीं रोग होई ।
तेरा महत्त्व जगके जड़ जीव जान,
है सार धर्म्म यह बात समस्त मानें ॥

श्रीगुरुदेव-महिमा ।

जिनसे वेद और शास्त्र पढे जायँ उनको आचार्य्य और जिनसे श्रीभगवान्‌से मिलनेके उपाय सीखे जायँ उनको गुरुदेव कहते हैं। आचार्य्य और गुरुदेव दोनों एकही अर्थके शब्द हैं। आचार्य्य और गुरुको सब समय प्रणाम करना, उनकी आज्ञाके अनुसार चलना और उनमें श्रद्धा करना शिष्यका प्रधान कर्त्तव्य है। परमात्मा जगदीश्वर जब किसी पुरुषकी धर्म्मोन्नति किया करते हैं तो आचार्य्य और गुरुदेवके द्वारा ही अपने उपदेश प्रकट किया करते हैं। वे परमात्मा सर्वव्यापक होनेके कारण मनुष्यदेह रूपी किसी केन्द्रसे ही आज्ञा प्रकाशित किया करते हैं। इस कारण जिस मनुष्यदेहसे ईश्वरकी आज्ञा प्रकट हो वह देह भी पूजने योग्य है। इसी कारण महात्माओंने कहा है *:—

ज्यों कपड़ा दरजी गहि ब्योंतत,
काठ को त्यों बढ़ई करि आनें ।
कञ्चनको ज्ञु सुनार कसे पुनि,
लोहको घाट लुहारहि जानें ॥

---

* श्रीगुरुदेवविज्ञान गुरुगीता आदि ग्रन्थोंमें देखने योग्य है ।

पाहनको * कसि लेत सिलावट,
पात्र कुम्हारके हाथ निपानैं ।
तैसे हि शिष्य कसै गुरुदेवजु,
पात्र कुपात्र सबै मन मानैं ॥
मौज करी गुरुदेव दया करि
शब्द सुनाय कस्यो हरि नेरो † ।
ज्यों रविके प्रकटे निशि जात—
सुदूरि कियो भ्रम भान अँधेरो ॥
त्यों अज रूप अरूप सुब्रह्मजु,
ईश दयालु जिमो दुख हेरो ।
कायक वाचक मानसहू करिकै,
गुरुदेवहि वन्दन मेरो ॥

सदाचार ।

धर्म्मको वढ़ानेवाली शारीरिक सब चेष्टाओंको सदाचार कहते हैं ‡ । इस कारण सदाचारकी गणना अनन्त है और शरीरसे इस धर्म्मसाधनका निकट सम्बन्ध है । इसी कारण सदाचारोंको शास्त्रोंने प्रथम धर्म्म कहकर वर्णन किया हैं । × सबसे पहिले अभ्यास करने योग्य कुछ सदाचारोंका वर्णन किया जा रहा है ।

(१) पिता माताकी योग्यताके अनुसार ही यह उत्तम

---

* पत्थर । † निकट ।

‡ यह सदाचारका लक्षण है । कण्ठस्थ करा दिया जाय ।

× आचारः प्रथमो धर्म्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च ।
तस्मादेतव समायुक्तं गृह्णीयादात्मनो द्विजः ।
॥ इति प्रजापतिर्दक्षः ॥

मनुष्य देह मिला करता है। इस कारण जीवन भर यथाशक्ति माता और पिताकी सेवा करना पुत्रका प्रधान धर्म है।

(२) माता, पिता और गुरुजनोंको प्रतिदिन प्रातःकाल और सन्ध्याको विधिपूर्वक प्रणाम † करना उचित है और उनके निकट होनेपर खड़े होकर अति नम्रता दिखाना उचित है। पिता, माता तथा गुरुजनोंकी सेवा और सम्मान करनेसे आयुकी वृद्धि हुआ करती है।

(३) बुद्धिमान पुरुषको नियमसे अधिक निद्रा लेना, शरीरमें आलस्य रखना, शरीरके सुन्दर दिखानेमें अर्थात् रूप बनानेमें यत्न करना और भोजन तथा वस्त्रमें अधिक आसक्ति रखना, इत्यादि निन्दनीय कार्य्योंको त्याग करना उचित है।

(४) अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषोंको सूर्य्योदयसे पहिले उठना, प्रतिदिन और प्रतिमुहूर्त्त अपने वर्ण, आश्रम और अधिकारके अनुसार धर्मसाधनका विचार रखना, उत्साह और पुरुषार्थशक्तिको बढ़ाना और शुचि, शीलवान्, मितभाषी, धीर और विनयी होना उचित है।

सनातनधर्मके अनुसार मनुष्यके चलने, फिरने, उठने, बैठने, खाने, पीने, पहिनने, बोलने इत्यादि सब शरीरिक चेष्टाओंके साथ धर्म और अधर्मका सम्बन्ध माना गया है। इस कारण बुद्धिमानोंको उचित है कि, वेद और शास्त्रोंकी आज्ञाओंके अनुसार तथा पिता, माता और गुरुजनोंके उपदेशके अनुसार अपनी चालचलनको सुधारे रक्खा करें।

---

† शारीरिक, वाचनिक और मानसिक भेदसे प्रणाम ३ प्रकारका होता है। शारीरिक तीन प्रकारके प्रणामके भेद भी समझा दिये जायँ।

निगमागमस्वरूप । ⊛

वेद शास्त्र बहु जानिये, निगमागमको † रूप ।
वेद अनन्तहि होत हैं, शास्त्र अनन्त अनूप ‡ ॥
तिनके भेद गिनावहीं, मुनि अनेक परवीन ।
भाषामय पर्य्याय कछु, कहूं बनाय नवीन ॥

वेदके भेद ।

यजु ऋक् पहिलो दूसरो, साम मिलाये तीन ।
वेद अथर्वण पूर्ण ये, चारों अति प्राचीन ॥

उपवेदभेद ।

सामवेदको जानिये, गन्धर्वहु उपवेद ।
वैद्यक आयुर्वेद यहि, ऋग्वेदहिको भेद ॥
धनुर्वेद उपवेद है, यजुर्वेदको जान ।
वास्तु अथर्वणवेद जो, शिल्प शास्त्र तिहि मान ॥

वेदाङ्गभेद ।

शिक्षा कल्पहिं जानिये, अरु व्याकरण निरुक्त ।
छन्द भेद वेदाङ्गको, पुनि ज्योतिष संयुक्त ॥

दर्शनभेद ।

मीमांसा पातञ्जलहु, सांख्य न्याय पुनि होय ।
वैशेषिक वेदान्त अरु, भक्ति कहावे सोय ॥
वेद कहैं वेदान्तको सब सिद्धान्तहु सार ।
सप्तज्ञानमय सप्तविधि, दर्शनशास्त्र विचार ॥

⊛ शिष्यको निगमागमरूपी वेद और शास्त्रोंके भेद समझा दिये जायँ और ये दोहे कण्ठस्थ करा दिये जायँ ।

† वेद और शास्त्र । ‡ बे जोड़

स्मृतिभेद ।

मनु हि अत्रि अरु विष्णु पुनि, और कहत हारीत ।
याज्ञवल्क्य उशना, समुझि, भनत अङ्गिरा मीत ॥
यम वर्णत हैं सकल कवि, आपस्तम्ब प्रमान ।
संवर्त हि शातातप हि, कात्यायन जिय जान ॥
बहुरि वृहस्पति भेद यह, पाराशर मनु व्यास ।
शंख-लिखित गौतम स्मृति, दक्ष वशिष्ठ प्रकाश ॥

महापुराणभेद ।

ब्रह्माण्डहिं ब्रह्महिं गिनत, वामन ब्रह्मविवृत्त ।
मार्कण्डेय भविष्य ये, सब दुख हरैं सुवृत्त ॥
नारद विष्णु वराह अरु, गारुड़ पद्म सुसार ।
भगवतरूपी भागवत, भक्तिमार्ग-आधार ॥
मीन कूर्म्म अरु लिङ्ग शिव, स्कन्द अग्नि सुविचार ।
महापुराण विभेद ये, सुनतहिं मिटै अँध्यार ॥

उपपुराणभेद ।

सनतकुमारहिं जान पुनि, नारसिंह सुस्कन्द ।
दुर्वासा मारीच गनि, नारद कपिल अमन्द ॥
वामन अरु ब्रह्माण्ड कहि, भार्गव वरुण बखान ।
माहेश्वर पुनि कालिका साम्ब सूर्य्य यह जान ॥
नन्दिपुराण पराशरहु, पुनि संचय सर्वार्थ ।
और भागवत मिलि भये, अष्टादश सब सार्थ ॥ *

---

* पुराण और उपपुराणोंके नामोंमें जहां एक नाम दोनोंमें आया है, वहां एक पुराणका नामभेद उचित है । यथा—विष्णुभागवत और देवीभागवत तथा बृहन्नारदीय पुराण और नारदीय पुराण इत्यादि समझा दिया जावे ।

तन्त्रभेद ।

ब्राह्मणभेद अनन्तसों वेद अनन्त विकाश ।
तन्त्र अनन्तके भेद तिहुं, शास्त्र अनन्त प्रकाश ॥
सत रज तम गुण भेदसों, तन्त्रहुँको पहिचान ।
समदर्शी समदृष्टि धरि, देखत हैं गुणवान ॥

धर्मलक्षण ।

वेद और शास्त्रोंमें केवल "धर्म" शब्द ही प्रायः पाया जाता है। "सनातनधर्म" अन्य उपधर्मोंसे अपने धर्म-सिद्धान्तोंकी पृथकता दिखानेके लिये पीछेसे कहा जाने लगा है। धर्मके लक्षण पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षियोंने चार प्रकारसे वर्णन किये हैं। यथा—

(१) वेद जिन कार्योंकी आज्ञा देवें वे ही धर्म और उनकी आज्ञाके विरुद्ध कार्य्य अधर्म कहाते हैं।

(२) जिस शारीरिक और मानसिक कर्म्म द्वारा स्वर्ग अथवा मोक्षकी प्राप्ति हो, उसको धर्म कहते हैं।

(३) जिस कार्यद्वारा सत्त्वगुणकी वृद्धि हो, उसको धर्म कहते हैं और जिससे तमोगुण बढ़े, उसको अधर्म कहते हैं।

(४) श्रीभगवान्‌की जिस शक्तिने ब्रह्माण्डको धारण कर रक्खा है और जिसके द्वारा जीव क्रमशः उन्नत होकर मुक्त हो जाता है, उसको धर्म्म कहते हैं।

ये चारों लक्षण एक ही भावके प्रकाशक हैं। केवल पूज्य-पाद महर्षियोंके कथनमें भेद है। * हमारे सनातनधर्म्मका

---

* विद्यार्थीको इन चारों लक्षणोंकी एकता यथासम्भव

लक्षण इस प्रकारसे विस्तृत और सर्वव्यापक है कि, पृथ्वी-भरके अन्य सब धर्ममार्ग इस अभ्रान्त धर्मसिद्धान्तकी छायासे ही प्रकाशित हुए हैं।

धर्म्मके प्रधानतः तीन अङ्ग हैं। यथा-यज्ञ तप और दान। ‡ जिनमेंसे वेदके कर्म्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड रूप तीन विभागोंके अनुसार यज्ञके प्रधान रूपसे ज्ञानयज्ञ, उपासनायज्ञ और कर्म्मयज्ञ ये तीन भेद और साधारण रूपसे बहुत भेद हैं। उसी प्रकारसे तप और दानके भी बहुत भेद हैं। इस प्रकार सनातनधर्म्मके साधनोंका बड़ा भारी विस्तार है। केवल इसी धर्म्मसिद्धान्तको सार्वभौम और सर्वजीवहि-तकारी धर्म्म कह सकते हैं।

सत्सङ्ग-महिमा।

जलचर थलचर नभचर नाना।
जे जड़-चेतन जीव जहाना॥
मति कीरति गति भूति भलाई।
जब जेहिं जतन जहां जो पाई॥
सो जानब सत्सङ्ग प्रभाऊ।
लोकहु वेद न आन उपाऊ॥

समझा दी जाय और ये चारों लक्षण कण्ठस्थ करा दिये जाँय। इन चारों लक्षणोंमेंसे पहला स्मृत्युक्त लक्षण और पिछले तीनों दर्शनशास्त्रोंके तीन विभागोंके अनुसार तीन लक्षण हैं, ऐसा समझा देना उचित है।

‡ यज्ञदानतपः कर्मं न त्याज्यं कार्य्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥ इति गीतोपनिषद्॥

विनु सत्सङ्ग विवेक न होई ।
राम कृपा विनु सुलभ न सोई ॥
सत सङ्गति मुद मङ्गल मूला ।
सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥
सठ सुधरहिं सत्सङ्गति पाई ।
पारस परसि कुधातु * सुहाई † ॥
विधि हरिहर कवि कोविद वानी ।
कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मोसन कहिजात न कैसे ।
साक-वनिक ‡ मनिगन गुन जैसे ॥
उपजहिं एक सङ्ग जल माहीं ।
जलज § जोंक जिमि गुन विलगाहीं ॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू ।
जनक एकु जग जलधि अगाधू ॥
भल अनभल निज निज करतूती ।
लहत सुयश अपलोक विभूती ॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू ।
गरल अनल कलिमल सरि + व्याधू ॥
विछुरत एक प्राण हरि लेई ।
मिलत एक दारुण दुख देई ॥

---

* लोहा । † सोना होता है । ‡ काछी । § कमल ।
+ वैतरणी ।

भलो भलाई पै लहै, लहै निचाई नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच॥
वन्दौं सन्त समान चित, हित अनहित नहिं कोउ।
अञ्जलि गत शुभ सुमन जिमि, सम सुगन्ध कर दोउ॥
सन्त सरल चित जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा, रामचरण रति देहु॥*

भक्ति।

जगत्कर्ता परमपिता सर्वसक्तिमान् श्रीभगवान्‌की आज्ञासे ही इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, स्थिति और लयक्रिया हुआ करती है। वे सर्व्वज्ञ परमेश्वर ही जीवको उसके शुभकर्म्मके अनुसार पुण्यलोक और अशुभ कर्म्मके अनुसार पापलोकोंमें जन्म दिया करते हैं। परमकृपालु श्रीपरमात्माकी अपार कृपासे ही योगी और मुनिगण आवागमनसे बचकर मुक्ति पदको प्राप्त किया करते हैं। जिनकी आज्ञासे सूर्य्यदेव नियमित समयपर प्रकाशित होते हैं, जिनके भयसे हमारी पृथ्वी और अनन्त ग्रह नक्षत्रसमूह अपने अपने स्थानपर स्थित हैं और जिनकी दयालुतासे मनुष्यगणको इस लोक और परलोकके अनेक सुखोंकी प्राप्ति हुआ करती है, उनकी महिमाका वर्णन करना असम्भव है। वे सर्व्वव्यापक, रूपरहित और मन वचनसे अतीत हैं, परन्तु अपनी अपार करुणाके कारण भक्तोंके कल्याणार्थ साकाररूपको भी धारण किया करते हैं। उनमें विना भक्ति किये जीवगणका यथार्थ कल्याण कदापि नहीं होता।

---

* परम भागवत गोस्वामिवर तुलसीदासजी महाराज लिखित।

जीव प्रीतिका भूखा है। जब उसकी प्रीति माता पिता और गुरुजनोंमें होवे तो उसी प्रीतिका नाम श्रद्धा है। जब उसकी प्रीति स्त्री वा मित्र आदिमें हो, तब उस प्रीतिका नाम प्रेम है। जब पुत्र कन्या आदिमें हो अर्थात् वह स्रोत निम्नगामी हो तब उसका नाम स्नेह है। परन्तु जीव जब इन सांसारिक सम्बन्धोंको अनित्य समझकर अपने हृदयके प्रीति-प्रवाहको उस एक मात्र हृदयनाथ जगत्-कर्ता परमेश्वरकी ओर फेरे तब ही उस प्रीतिका नाम भक्ति है। शास्त्रोंमें भक्तिके दो प्रधान भेद किये हैं; यथा-गौणी भक्ति और पराभक्ति। श्री परमात्माकी भक्तिपूर्ण कथा तथा उनकी सगुण लीलाके वर्णनोंको सुननेका अभ्यास बढ़ाना; उनकी नाना देवमूर्तियोंकी पूजा करनेकी रुचि बढ़ाना और श्रीभगवान्को प्रभु और अपनेको उनके अधीन दास समझनेमें यत्न करना इत्यादि जो भक्तिसाधनके नाना भेद कहे गये हैं सो सब गौणीभक्ति कहाती है। गौणीभक्तिके साधनोंको करते हुए जब साधक ऐसी ऊंची कक्षामें पहुंच जाय कि उसका चित्त केवल एकमात्र भगवान्में ही सब समय लगा रहे और चलते फिरते, उठते बैठते, कहते सुनते, सोते जागते, सब समय ही उसका चित्त अनन्य रूपसे जीवतापहारी परमेश्वरमें ही लगारहे तो उस उन्नत-भक्तिके अधिकारको पराभक्ति कहते हैं। जिस साधनद्वारा भगवद्भक्तिकी वृद्धि होती है उस साधन शैलीको ही उपासनाकाण्ड कहते हैं।

साधुलक्षण।

विषय अलम्पट शील गुणाकर।
पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥

सम अभूत * रिपु विमद विरागी ।
लोभामरष † हरष भय त्यागी ॥
कोमल चित दीनन पर दाया ।
मन वच क्रम हरि भक्ति अमाया ॥
सबहिं मानप्रद आपु अमानी ।
सदा जगतहितरत ते ज्ञानी ॥
विगत काम हरि नाम परायन ।
शान्ति विरति विनती मुदितायन ॥
शीतलता सरलता मयत्री ।
द्विजपद प्रीति धरन जन जंत्री ॥
शम दम नियम नीति नहिं डोलहिं ।
परुष वचन कबहूं नहिं बोलहिं ॥
ए सब लक्षण बसहिं जासु उर ।
जानेहु तात संत संतत फुर ॥
निन्दा व स्तुति उभय सम, ममता हरिपद कञ्ज ।
ते सज्जन हरि प्रानप्रिय, गुनमन्दिर सुखपुञ्ज ॥

महात्माओंने साधुओंके लक्षण ऊपर लिखित रीतिपर वर्णन किये हैं। जिनमें ये लक्षण पाये जायँ वेही साधु हैं। धर्म्मशास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है कि जिनमें निम्नलिखित दस लक्षण पाये जायँ वेही धार्मिक समझे जासकते हैं। यथाः—(१) धृति अर्थात् मनमें संतोष रखना। (२) क्षमा अर्थात् दूसरेको अपकार पहुंचानेकी शक्ति रहनेपर भी उसका उपकार ही करना। (३) दम अर्थात् मनको विषय-भोगोंकी ओर जानेसे रोकना। (४) अस्तेय अर्थात् अन्यायसे धन संग्रह न करना। (५) शौच अर्थात् शास्त्रविधि-

---

* अजातशत्रु। † क्रोध।

के अनुसार मिट्टी और जल आदि द्वारा शरीरकी शुद्धि करना। (६) इन्द्रियनिग्रह अर्थात् इन्द्रियोंका दमन करना। (७) धी अर्थात् शास्त्रोंका अर्थ समझना। (८) विद्या अर्थात् आत्मज्ञानप्राप्ति करना। (६) सत्य अर्थात् सत्य बोलना और सत्य आचरण करना। (१०) अक्रोध अर्थात् क्रोध होने योग्य बात बननेपर भी क्रोध न करना। बुद्धिमान् पुरुषमात्रको ही इन उत्तम गुणोंके संग्रह करनेमें यत्न करना उचित है। *

पञ्चदेव स्तुति।

(कण्ठस्थ करने योग्य)

राजत रजत कैसो अचल अनादि देव,
गंग उत्तमंग † सरवंग भूतिधर हैं।
मौलि में मयंक ‡ अंक लाये नित शैलजाको,
निपट प्रसन्न मुख हाथ लिये वर हैं।
त्र्यंबक त्रिलोकनाथ त्रिपुर विनाशनकारी,
तीखन त्रिशूल धारी दुष्टभयङ्कर हैं।
ध्यान धरि देखो दीन दुःखनके टारिवेको,
सागर कृपाके गुणागर देव हर हैं॥
सुमुख औ एकदन्त गजानन धूम्रकेतु,
विकट विनाशक हैं विघन अशेषको।

---

* पद्यांश परम भागवत श्रीगोस्वामी तुलसीदासकृत है तथा धर्म्मलक्षण मनुस्मृतिमें वर्णित हैं। यह श्लोक कण्ठस्थ भी करवा दिया जाय। यथाः—धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।

† शिर। ‡ चन्द्रमा।

विद्यावरदायक विनायक ललित गुन,
ऋद्धि सिद्धि दायक हैं कामना विशेषको।
लम्बोदर कपिला औ कर्णगज भालचन्द्र,
इन्द्र आदि सेवैं पद यातें जय वेषको।
मङ्गल करण भवभयको हरणहार,
लेवत हमेश नर नाम श्रीगणेशको॥

नमो ब्रह्मरूपिणी त्रिलोचनी अपूर्वरूप,
देवहू न जाने गति जाके अवतारकी।
शेषहू सुरेश लवलेशहू न पावत हैं,
अजहू धरत रज पायन उदारकी।
नेति नेति रटैं वेद ब्रह्माहू न जाने भेद,
सत औ असत भाव माया परपारकी।
त्रिगुण त्रिवेद भूतिगत स्थिति होत जासों,
वारापार करेको महिमा पारावारकी॥

राजै एक चक्र सप्त अश्व भार बहिवेको,
अरुण वदन वर विश्व सुखदाई है।
रोधक असाधु जन सोधक तमोगुणको,
उदित प्रबोध बुद्धि साधुजन पाई है।
पावन करन हैं पतित पद पंकजसों,
करुणा अपार जग तीनों दरसाई है।
तारापति तेज हर ब्रह्मतेज तमनासी,
मार्तण्ड चण्ड यों प्रताप प्रभुताई है॥

पौढ़े शेष आसन पैं करत विलास जय,
कमला चरण सेवैं बैठिकैं निकटरे।
जाके नाभि मध्य कंज प्रगट्यो विधाता,
सोतो केतक जगत हेत करै नटखटरे।

सुर मुनि गावैं गुन ध्यावैं धरि धारनासौं,
पार नाहिं पावैं अरु हेरैं घट घटरे।
पापको पलायन जो चाहै तू चतुर चित्त,
नारायन नाराधन तो तूं नित रटरे॥
एक औ अनादि जाको अंत नहीं कोउ पायो,
आगम निगम गायो विधितैं अनेक हैं।
कैकरि सगुण सोई पंचरूप धारे ताकौ,
गन ईस शिव सूर्य्य देवी विष्णुहूं कहैं।
शुद्धि वुद्धि करे अविरुद्ध वेद मारगके,
जिनके हृदय जय विमल विवेक है।
पचि पचि विरंचि औ कहैं ऋषि एक मेक,
एक वही पञ्च अरु पञ्च वही एक हैं॥*

वर्णधर्म।

जिस प्रकार उद्भिज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज ये चार भेद जीवोंके हैं, उसी रीतिके अनुसार आर्य्यजातिके चार भेद हैं। यथा—ब्राह्मणवर्ण, क्षत्रियवर्ण, वैश्यवर्ण और शूद्रवर्ण। वेद और शास्त्रोंका पढ़ना, वेद और शास्त्रोंका पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान लेना और दान देना ये छः धर्म्म ब्राह्मण वर्णके हैं। प्रजाकी रक्षा करना, दान देना, वेद और शास्त्रोंका पढ़ना, यज्ञ करना और इन्द्रियोंके भोगोंसे वचना ये क्षत्रिय वर्णके धर्म्म हैं। पशुओंका पालन करना, दान देना,

---

* एक ही परमात्माके सगुण स्वरूपके ये पांच भेद पांच प्रकृतिके उपासकोंके लिये निर्णय किये गये हैं सो स्पष्ट रूपसे समझा दिया जाय।

वेद और शास्त्रोंका पढ़ना, वाणिज्य करना और रुपयेपर सूद लेना ये वैश्यवर्णके धर्म्म हैं। और निष्कपट होकर तीनों वर्णों की सेवा करना शूद्रवर्णका धर्म्म है। गुण और कर्म्मके अनुसार जातिका विभाग किया गया है। त्रिगुणका आधार स्थूल शरीर है। स्थूल शरीरका गुण मातापिताके रजवीर्य्य द्वारा आकृष्ट होता है और साधारण कर्मसे वदल नहीं सकता। इस कारण गुणकर्मके विचारसे वर्णमें जन्मका प्राधान्य है। अतः प्रत्येक वर्णकी पूर्णताके लिये उसी वर्णके माता पितासे जन्म होना और उसी वर्णके शास्त्रोक्त कर्मोंका पालन करना वेद-सम्मत है। यदि इन दोनों वातोंमेंसे किसी वर्णमें एककी भी कमी हो तो वह अधूरा समझा जायगा। तथापि वर्णके विचारमें जन्मकी प्रधानता मानी गई है, क्योंकि जन्म है स्वाभाविक और ईश्वरदत्त; परन्तु कर्म मनुष्य साध्य हैं।

कर्म्मलक्षण द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी पहचान करनेके लिये श्रीगीताजीमें निम्नलिखित स्वाभाविक कर्म्म वर्णन किये हैं। शम, दम, तपस्या, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता ये सब ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म्म हैं। शौर्य, तेज, धृति, दक्षता, युद्धसे पीठ न फेरना, दान और ईश्वरभाव ये सब क्षत्रियके स्वभावसिद्ध कर्म्म हैं। कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य ये वैश्यके स्वाभाविक कर्म्म हैं और दूसरेकी सेवा करना शूद्रका स्वभावसिद्ध कर्म्म है। सनातन-धर्ममें जन्मान्तरवाद परम माननीय है और पूर्व जन्मके कर्म द्वारा मनुष्यको ब्राह्मणादि वर्णमें जन्म मिलता है, इस कारण किसी वर्णको अपने वर्णाधिकारपर विचार करनेमें शङ्काका अवसर नहीं है। पूर्वकथित लक्षणोंसे चारों अधिकार पहचाने जा सकते हैं। अपने अपने वर्णधर्मके अनुसार पूर्ण अधिकारोंके प्राप्त करनेसे और अपने अपने वर्णके नियमानुसार सदाचारों-

के पालन करनेसे आर्य्यगण सब प्रकारके कल्याणोंको प्राप्त किया करते हैं।

ब्राह्मण भेद।

इस संसारमें ब्राह्मणोंकी महिमाका पार नहीं है। ब्राह्मणोंके द्वारा ही परम कल्याणकारी ज्ञानज्योतिका विकाश पृथिवी भरमें हुआ है। * भूतकालमें ब्राह्मणोंके द्वारा मनुष्य जातिकी पूर्ण उन्नति हुई थी। वर्त्तमानकालमें भी सनातन धर्मकी यत्किंचित् रक्षा इसी जातिके द्वारा हो रही है और भविष्यत् कालमें आध्यात्मिक उन्नतिके अर्थ शुद्ध ब्राह्मण कुलोंपर ही सब कुछ भरोसा किया जा सकता है। परन्तु सनातन धर्मके सब अङ्गोंकी अवनति जिस प्रकार हुई है उसी प्रकारसे वर्णोंमें प्रधान वर्ण तथा मस्तकरूपी ब्राह्मणवर्णकी बहुत हीन दशा हो गई है। इस कारण ब्राह्मणवर्णके धर्मकी उन्नतिके अर्थ पुराणोंमें कहे हुए कुछ ब्राह्मणोंके लक्षण कहे जा रहे हैं। इनको विचार कर ब्राह्मणधर्मका सुधार सदा प्रार्थनीय है। ब्राह्मणके भेद यथाः—

देव मुनी अरु विप्र कहि, छत्री वैश्य बखान।
शूद्र बिडाल मलेच्छ पशु, भेद चँडालहि जान॥
सकल धर्म निधि वेद विद, ज्ञान विज्ञान प्रवीन।
देव विप्र वैराग्य युत, ईश भक्ति लवलीन॥
त्रय कर्मी तप सत्य युत, मुनी विप्र सो जान।
षट्कर्मी निज वृत्ति रत, विप्र विप्र गुजरान॥

---

* एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः। इति श्रीमनुः।

अश्व चढ़े आयुध गहे, द्विज क्षत्री नय शूर ।
खेती गोरक्षा वणिज, विप्र वैश्य सो पूर ॥
तैल लौण घृत दूध दधि, तिन पुनि लाखउ नील ।
अरु मधु बेचै विप्र है, शूद्र विप्र दुःशील ॥
भूतद्रोह अघ कर्म्म रत, लेहहिं दान कुदान ।
गो कन्या बेचतहिं शठ, द्विज मार्जार बखान ॥
श्रुति ऋषि निन्दक मोहयुत, सदाचार करि नाश ।
स्नानरु संध्या रहित वे, म्लेच्छ विप्र अघराश ॥
भक्ष्याभक्ष्य कृतघ्न अति, गम्यागम्य निशंक ।
पशु ब्राह्मण सो जानिके, सदा करो तिहि शंक ॥
निन्दक लोभी पिशुन अति, निर्दय परधनहारि ।
विप्र जानि चंडाल सो, द्विज दश विधि निरधारि ॥
दश लक्षण एहि वर्णके, जांच मनहि मन जान ।
करहि विवेकी धर्म्मरत, कर्म्म दान सनमान ॥*

आश्रम धर्म्म ।

चारोंवर्णोंकी रीतिके अनुसार सनातन धर्म्ममें चार आश्रम माने गये हैं । इन चारोंकेनाम यथा,-ब्रह्मचर्य्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और सन्न्यासाश्रम । (१) प्रथम अवस्था वह कहाती है जिसमें प्रवृत्तिके उपाय सीखे जांय और विद्या और बलकी पूर्णता सम्पादन की जाय । (२) दूसरी अवस्था वह कहाती है कि जिसमें प्रवृत्ति मार्गके द्वारा धर्म्म, अर्थ और काम इन त्रिवर्गोंकी प्राप्ति करते हुए मोक्षका मूल बांधा जाय । (३) तीसरी अवस्था वह

---

* ये पद्य भी कण्ठस्थ करने योग्य हैं !

कहाती है कि जिसमें निवृत्ति अर्थात् त्यागका अभ्यास किया जाय और (४) चौथी अवस्था वह कहाती है कि जिसमें निवृत्तिकी पूर्णता करके मोक्षपदको प्राप्त कर लिया जाय।

यज्ञोपवीत संस्कारके होते ही गुरुके निकट जाकर वेद और शास्त्रोंका पठन करना, गुरुकी सेवाको मुख्य जानकर मन वचन और कायाको पवित्र रखकर विद्याभ्यास करते रहना और जब तक विद्याभ्यास किया जाय, शरीरसे और मनसे स्त्रीका त्याग रखना इत्यादि ब्रह्मचर्य्य आश्रमके धर्म्म हैं। वेद और शास्त्रोंमें योग्यता प्राप्त करके माता पिता और गुरु-जनोंकी सम्मतिसे विवाह कर शास्त्रोक्त सदाचारोंके अनुसार चलना, पञ्चमहायज्ञका विधिपूर्वक साधन करना और अपने वर्णधर्म्मका पालन करते हुए यथाशक्ति परोपकारमें तत्पर रहना इत्यादि गृहस्थाश्रमके संक्षिप्त धर्म्म हैं। आयुके तीसरे भागमें पुत्रको घरका काम सौंपकर तीर्थ और वनोंमें वास करना तथा परोपकारमें अपने पुरुषार्थको लगाना इत्यादि वानप्रस्थाश्रमके धर्म्म हैं। और संसारसे पूर्ण वैराग्य होजाने पर भिक्षा वृत्ति द्वारा शरीरकी रक्षा करते हुए अपने मनको सब प्रकारसे परमात्मामें लय कर देना इत्यादि सन्न्यास आश्रमके धर्म्म कहाते हैं। इन चारों आश्रमोंका विस्तृत वर्णन वेदोंसे लेकर नाना शास्त्रोंमें बहुत विस्तारके साथ पाया जाता है। इस समय ठीक तौर पर उस प्रकारके चारों धर्म्म निभना कठिन है परन्तु न करनेसे थोड़ा करना भी हितकारी हुआ करता है इस कारण यथाशक्ति चारों आश्रमोंका धर्म्म पालना मनुष्यमात्रका कर्त्तव्य है। *

---

* आश्रमधर्म्मका विस्तृत वर्णन मनु और याज्ञवल्क्यादि स्मृतियोंमें द्रष्टव्य है।

पूजाके उपचार ।

ध्यान आवाहन स्थापना, पाद्य सिंहासन होत ।
अर्घ्य अनन्तर स्नान पुनि, चन्दन पुष्प उदोत ॥
धूप दीप नैवेद्य कहि, बहुरि आरती लेखि ।
पानदान सुप्रदक्षिणा, नमस्कार सविशेखि ॥

पूजाके इस प्रकारसे सोलह उपचार शास्त्रोंमें कहे गये हैं और पुनः इनमेंसे घटाकर दस उपचार और पांच उपचार भी माने गये हैं। भक्ति बढ़ानेकी इच्छा करनेवाले और अपनी धर्म्मोन्नतिकी वासना रखनेवाले साधकको सदा इन उपचारोंको स्मरण रखकर श्रद्धाके साथ पूजा करना उचित है। ईश्वर-भक्तिके प्राप्त करनेके जितने उपाय वर्णन किये हैं उनमेंसे पूजाको सबसे प्रथम और बहुत हितकारी माना गया है। श्रद्धा-पूर्वक उपचारोंके अर्पण करनेसे चित्तकी दृढ़ता, तपकी वृद्धि और इष्टकी प्रसन्नता हुआ करती है और इन तीनोंके द्वारा भक्तिकी वृद्धि होती है। पूजा दो प्रकारकी है, यथा—बहिःपूजा और मानस पूजा। बहिःपूजा करते करते मानसपूजा करनेका अधिकार साधकको प्राप्त हुआ करता है। बहिःपूजामें ये सब उपचार प्रत्यक्षरूपसे अर्पण किये जाते हैं और मानसपूजामें केवल मनकी कल्पनासे ही उपचार अर्पण किये जाते हैं। भक्तिकी वृद्धिके अर्थ साधकगणको अपनी अपनी शक्तिके अनुसार उपचारोंके संग्रह द्वारा इष्टदेवकी पूजा करना अवश्य कर्त्तव्य है।

कर्म्मकाण्ड ।

कर्म्मका अधिकार सबसे विस्तृत और परमावश्यकीय है। कर्म्मके साधन जिस प्रकार स्थूलसे अति स्थूल हैं, उसी प्रकार

कर्म्मकी शक्ति अति बलवती है। चाहे शुभकर्म्म किया जाय, चाहे अशुभकर्म्म; उनकी योग्यता और शक्तिके अनुसार कर्त्ताको इस जन्ममें अथवा दूसरे जन्ममें शुभ अथवा अशुभ फलकी प्राप्ति अवश्य हुआ करती है। कर्म्मोंके ही भेदसे जीवगणको देव, मनुष्य और पशु आदि योनियोंकी प्राप्ति हुआ करती है। कर्म्म ही के भेदसे जन्मान्तरमें स्वर्गलोक, पृथ्वीलोक अथवा नरकलोकमें जन्म होता है। आर्य्यजातिको जन्मसे लेकर मृत्यु पर्य्यन्त कर्म्मकाण्डकी सहायता लेनी पड़ती है।

सत्त्वगुणके बढ़ानेवाले कर्म्मोंको पुण्यकर्म्म और तमोगुणके बढ़ानेवाले कर्म्मोंको पापकर्म्म कहते हैं, और उन्हीं पुण्य और पापकी छूटाई, बड़ाईके अनुसार सात उन्नतलोक और सात अधोलोक, इस प्रकारसे चौदह भुवनोंका वर्णन शास्त्रोंमें पाया जाता है। यह कर्म्मकी ही शक्ति है कि सात्त्विक कर्म्मके द्वारा जीवका अन्तःकरण क्रमशः शुद्ध होता हुआ वह मुक्तिपदको पहुँचा देता है और यदि वैसा न हो तो पाप-कर्म्मके द्वारा अन्तःकरणमें अधिकसे अधिक जड़ता लाते हुए जीवगणको नाना नीच योनियोंमें भरमाता रहता है। इस कारण धर्म्मोन्नतिकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यगणको प्रतिमुहूर्त कर्म्म पर सावधानताके साथ दृष्टि रखनी उचित है।

वेदोंमें कर्मका विषय अधिक होनेका कारण यह है कि कर्म्मका विस्तार और अधिकार सबसे अधिक है। वेदोंके जिस काण्डमें कर्मोंका वर्णन है उसको कर्म्मकाण्ड * कहते हैं। वेद और शास्त्रोंमें तीन प्रकारके कर्म्म माने गये। यथा,

* कर्म्मकाण्डका विस्तृत विवरण ब्राह्मणोंमें, बीसों स्मृतियोंमें और तन्त्रोंमें देखने योग्य है।

नित्य, नैमित्तिक और काम्य। जिन कर्मोंके न करनेसे पाप होता हो और करनेसे विशेष फल न मिलता हो उनको नित्यकर्म्म कहते हैं, यथा—त्रिकालसंध्यादि। जिन कर्मोंके करनेसे फलकी प्राप्ति होती है और न करनेसे पाप नहीं होता है उनको नैमित्तिक कहते हैं, यथा—तीर्थदर्शनादि। और जो कर्म्म किसी कामनाको पूरी करनेके लिये किये जाते हैं वे काम्य कर्म्म कहाते हैं, यथा—पुत्रेष्टियाग आदि। कर्म्मोंका सूक्ष्म विचार करते हुए किसी महर्षिने कर्म्मोंकी शक्तिके तारतम्यसे उनको आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक रूपसे तीन भागोंमें विभक्त किया है। उदाहरण समझनेके लिये ब्राह्मणभोजनादिसे आधिभौतिक, याग यज्ञादिसे आधिदैविक और स्वधर्म्म और स्वदेशउपकारक कर्म्म तथा ज्ञानविस्तारकारी कर्म्म आदिसे आध्यात्मिक कर्म्म समझने योग्य हैं। सब प्रकारके विहित कर्म्म पुनः दो भेदोंमें विभक्त हैं, यथा—सकाम कर्म्म और निष्काम कर्म्म। इस प्रकारसे कर्म्मकाण्डके अधिकारसमूह बहुत ही अद्भुत रहस्योंसे पूर्ण हैं और उनकी शक्तियाँ महान् हैं।

———

नाममाहात्म्य ।

अगुन सगुन दुई ब्रह्म स्वरूपा ।
अकथ अगाधि अनादि अनूपा ॥
मोरे मत बड़ नाम दुहूते ।
किये जेहि युग * निज बस निजबूते ॥
प्रौढ़ि सुजन जनि जानहि जनकी ।
कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मनकी ॥

---

* दोनों ।

एक दारुगत देखिय एकू।
पावक सम युग ब्रह्म विवेकू॥
उभय अगम युग सुगम नामतें।
कहउँ नाम बड़ ब्रह्म रामतें॥
व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी।
सत चेतन घन आनंद राशी॥
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी।
सकल जीव जग दीन दुखारी॥
नाम निरूपन नाम जतन तें।
सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन तें॥
निरगुन तें एहि भांति बड़, नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नाम बड़ रामतें, निज विचार अनुसार॥
नाम प्रसाद शम्भु अविनाशी।
साजु अमङ्गल मङ्गलराशी।
सुक सनकादि साधु मुनि योगी।
नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी।
नारद जानेउ नाम प्रतापू।
जग प्रिय हरि हरिहर प्रिय आपू॥
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू।
भगत शिरोमनि भै प्रहलादू॥
ध्रुव सगलानि * जपेउ हरि नामू।
पायेउ अचल अनूपम ठामूं॥
अपर अजामिल गज गनिकाऊ।
भए मुकत हरि नाम प्रभाऊ॥

* संसारसे ग्लानि होनेके कारण।

कहउँ कहां लगि नाम बड़ाई।
राम न सकहिं नाम गुन गाई ॥
नाम राम को कल्पतरु, कलि कल्यान निवास।
जो सुमिरत भय भाँगतें, तुलसी तुलसीदास ॥
चहुं युग तीनि काल तिहुँ लोका।
भये नाम जपि जीव विशोका † ॥
वेद पुराण सन्त मत एहू।
सकल सुकृत ‡ फल राम सनेहु ॥
ध्यान प्रथम युग मख विधि दूजे।
द्वापर परितोषत प्रभु पूजे ॥
कलि केवल मल मूल मलीना।
पाप पयोनिधि जन मन मीना ॥
नाम काम तरु काल कराला।
सुमिरत सुखद सुलभ सब काला ॥
राम नाम कलि अभिमत दाता।
हित परलोक लोंक पितु माता ॥
नहिं कलि करम न भगति विवेकू।
राम नाम अवलम्बन एकू ॥
कालनेमि कलि कपट निधानू।
नाम सुमति समरथ हनूमानू ॥
राम नाम नर केशरी, कनक कशिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि, पालहिं दलि सुरसाल ॥

—o—

† शोकरहित। ‡ पुण्य।

ज्ञानकाण्ड।

वेदोंके तीन काण्ड हैं, यथा–कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड, और ज्ञानकाण्ड। ईश्वरकी भक्ति और उनकी पूजा आदि उपासनाकाण्डके भेद हैं। सब प्रकारके याग यज्ञ और सदाचारसमूह कर्मकाण्डके विषय हैं। और सत् अर्थात् ब्रह्म, और असत् माया अर्थात् प्रकृति, इन दोनोंका विस्तृत विचार ज्ञानकाण्डमें किया गया है। ज्ञानकाण्डका अधिकार और दोनों अधिकारोंसे पीछे माना गया है। इसी कारण ज्ञानकी महिमा अधिक दिखाई गई है।

क्षेत्र अर्थात् शरीर और क्षेत्रज्ञ अर्थात् जो इस शरीरका देखनेवाला आत्मा इस शरीरमें है; इन दोनोंके विचारको ज्ञान कहते हैं। पांचों स्थूल भूत, पांचों कर्म्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, अहंकार, बुद्धि, मन आदिके द्वारा जीवका शरीर बनता है। यही क्षेत्र कहलाता है। और अनादि, सर्वव्यापी, सर्वदर्शी, पूर्णज्ञानयुक्त, परमात्मा जिनकी स्थिति सबके हृदयमें है वेही क्षेत्रज्ञ अर्थात् पुरुष हैं। मनुष्योंके मनमें नाना संकल्प विकल्परूपी विघ्न रहनेके कारण वह अपने हृदयनाथ पुरुषके दर्शन करनेमें समर्थ नहीं हुआ करता है। जब भक्तिसाधन और शास्त्रोक्त कर्म्मोंके करनेसे उसका चित्त मलरहित होकर शुद्ध होने लगता है और तत्पश्चात् शरीरके चौबीस तत्त्वोंका पूरा अनुभव उसको हो जाता है, तब अन्तमें अपने ही अन्तःकरणके द्वारा पुरुषरूपी परमात्माका दर्शन करके वह ज्ञानी पुरुष कृतकृत्य हो जाता है। ज्ञानकी पूर्णता सम्पादन करनेके अर्थ वैदिक दर्शन सात भागोंमें विभक्त हैं, यथा—न्याय-

* परमभागवत गोस्वामिवर श्रीतुलसिदास विरचित।

दर्शन, वैशेषिकदर्शन, योगदर्शन, सांख्यदर्शन, कर्म्ममीमांसा दर्शन, भक्तिमीमांसा दर्शन और ब्रह्ममीमांसादर्शन। इन सातों दर्शनोंकी शिक्षासे पूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति होती है।

श्रीगीताजीमें ज्ञान और अज्ञानके लक्षणोंका वर्णन इस प्रकारसे किया गया है। अपनी बड़ाई न करना, दंभका त्याग, अहिंसा, सहिष्णुता, सरलता, गुरुसेवा, अन्तर् और बहिर् दोनों प्रकारके शौच, शरीर और मनकी स्थिरता, मनके एकाग्र करनेकी शक्ति, विषयोंसे वैराग्य, अहंकारका त्याग, जन्म, मृत्यु व जरा आदिमें दुःख व दोष देखना, पुत्र स्त्री घर आदिमें आसक्ति न रखना, उनके सुख दुःखसे अपनेको सुखी दुःखी न मानना, हानि और लाभमें चित्तको एकसा रखना, श्रीभगवान्‌में अनन्य भक्ति करना, एकान्त रहनेकी इच्छा रखना, मनुष्योंकी भीड़से अलग रहनेकी इच्छा रखना और ज्ञानसे मोक्षकी सिद्धिमें विश्वास रखना; इस प्रकारसे ज्ञानके लक्षण कहे गये हैं। इनसे जो विरुद्ध विषय हों, सो ही अज्ञान कहाते हैं। सो अज्ञान त्यागने योग्य हैं और ज्ञानके लक्षण प्राप्त करने योग्य हैं।

भक्तिभेद।

भक्ति पन्थ निर्विघ्न है,
अति हि सुखद अति सूध।
जैसे औषधि पुष्टि की
मेवा मिश्री दूध॥
भक्ति तीन विधि कहत हैं,
नवधा (१) इक विधि मानि।

प्रेम लच्छना (२) परा (३) पुनि,
सब तैं परे बखानि ॥
श्रवण (१) कीरतन (२) सुमिरनौ (३),
पदसेवन (४) शुभ भेद ।
अर्चन (५) वन्दन (६) दासता (७),
सख्य (८) सुआत्मनिवेद (९) ॥
नवधा साधन साध्य यह,
गौण भक्ति का रूप । *
शनै शनै जु मिटावहीं,
भवभय काल स्वरूप ॥
प्रेम लच्छना भक्ति के,
भेद चतुर्दश जान । †
तिनमें मुख्य हैं सप्तविध,
शेष गौण कर मान ॥

---

* भक्तिके पूर्व कथित साधारण तीन भेदोंमेंसे यह नवधा भक्तिका अधिकार प्रथम समझा जाता है, जो साधनके द्वारा प्राप्त हो सकता है। गौणी और परा भक्तिमेंसे नवधा और प्रेमलक्षणा गौणीके भेद हैं।

† नवधा भक्तिसे प्रेमलक्षणा भक्ति उन्नत है। इसको रागात्मिका भी कहते हैं। प्रेम लक्षणाके ही भेद चौदह हैं, यथा—शृङ्गाररसके सात भेद और वीर, हास्य आदि सात रस मिलकर चौदह होते हैं। काव्य-शास्त्रके आठ रसोंमेंसे सात रसोंकी भक्ति गौण मानी गई है और शृङ्गार-रसके सात भेद किये गये हैं। वेही दास्य, सख्य आदि सातों भक्तिशास्त्रके अनुसार मान्य समझे जाते हैं।

दास्य सख्य अरु कान्त पुनि,
वात्सल्यात्मनिवेद ।
गुणकीर्तन तन्मयत्व तैं,
सात मुख्य शुभ भेद ।
जिनको देखन सुनन अरु,
ध्यावन एक हि रूप ।
महाभाव धारहिं सदा,
भक्त शिरोमणि भूप ॥
सब तैं परे जु ब्रह्म हैं,
सत चित आनंद मूल ।
पर तैं परे जे जानिके,
हरैं सकल भव भूल ॥
नवधाते उत्तम सदा,
प्रेम लच्छना भाव ।
प्रेम लच्छना तैं परा,
भावाभाव-अभाव ॥

तप ।

भक्तिसाधन, कर्म्मसाधन और ज्ञानसाधन ये तीनों धर्मके उत्तम अङ्ग हैं। परन्तु तपोधर्म भी बहुत ही आवश्यकीय साधन है। अपने शारीरिक और मानसिक सुखोंका त्याग करके शरीर और मनके द्वन्द्वरहित करनेको तप कहते हैं। जिस प्रकार पशुको बांधे रखनेसे उसका वेग व उसकी काम करनेकी शक्ति अधिक बढ़ जाया करती है, उसी प्रकार मन, इन्द्रिय और शरीरको, सुख भोगसे हटा कर तपमें लगानेसे उनकी शक्ति असाधारण रूपसे बढ़ जाया करती है।

इसी कारण, शास्त्रोंमें वर्णन है कि तपःशक्ति द्वारा प्राचीन कालमें ऋषि मुनिगण नाना दैवी कार्य्य करनेमें समर्थ हुआ करते थे। अब भी महात्मागणमें तपकी अलौकिक शक्ति देखनेमें आया करती है। शास्त्रोंमें दो प्रकारका तेज वर्णित है, यथा—ब्रह्मतेज और क्षात्रतेज। उनमेंसे क्षात्रतेज दानके द्वारा और ब्रह्मतेज तपके द्वारा सुरक्षित होता है। सती स्त्रियां भी तपःशक्तिके द्वारा ही असाधारण गतिको प्राप्त किया करती हैं।

जिन जिन अङ्गोंकी तपःशक्ति बढ़ाई जाती है, साधकगणको उसी अङ्ग तथा भावकी शक्ति अधिक प्राप्त हुआ करती है। यथा—वाचनिक तपके द्वारा और प्रकारका फल मिलने पर भी वाक्‌सिद्धिकी प्राप्ति तो अवश्य हुआ करती है। साधनके विचारसे तप तीन प्रकारका कहा जाता है, यथा-शरीरिक तप, वाचनिक तप और मानसिकतप। श्रीगीताजीमें तीनों प्रकारके तपोंके साधारण लक्षण इस प्रकारसे वर्णित हैं *। देवता, ब्राह्मण, गुरु और तत्त्वज्ञानी महात्माकी पूजा करना, शौच, सरलता, ब्रह्मचर्य्य और अहिंसा यह शारीरिक तप कहाता है। सत्य, प्रिय और हितकारी वाक्य बोलना, वेद और शास्त्रादिका पाठ करना यह वाचनिक तप कहाता है और मनकी प्रसन्नता, मौन, इन्द्रियदमन, मनको रोकना, यह मानसिक तप कहाता है। तीनों प्रकारके तपही धार्मिकगणको साधन करने योग्य हैं।

---

* देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् । ब्रह्मचर्य्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् । स्वाध्याभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः । भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥

श्रीहरिकथा माहात्म्य। *

बुध विश्राम सकल जन रंजनि।
राम कथा कलि कलुष विभंजनि ॥
राम कथा कलि पन्नग भरनी।
पुनि विवेक पावक कहं अरनी † ॥
राम कथा कलि कामद गाई।
सुजन सजीवनि मूरि सुहाई ॥
स इ वसुधातल सुधा तरङ्गिनि।
भयभंजनि भ्रममेक ‡ भुअङ्गिनि ॥
§ असुरसेन सम नरक निकंदनि।
साधु विवुधकुल हित गिरिनन्दिनि ॥
सन्त समाज पयोधि रमासी।
विश्वभार धर अचल क्षमासी × ॥
यम गन मुहमसि जग यमुनासी।
जीवनमुकुति हेतु जनु कासी ॥

---

* भगवान्नामकी महिमा भलीभांति समझा देना उचित है, जिससे हरिनाममें पहिलेसे ही रुचि बढ़े। और यह भी भलीभांति समझा देना उचित है कि, वेदोंमें जिस प्रकार इन्द्र, रुद्र, अग्नि आदि सब शब्द उसी परमात्माके वाचक हैं, उसी प्रकार सगुण उपासनाके हरि, विष्णु, गणेश, सूर्य्य, देवी, दुर्गा, शिव आदि शब्द उसी परमात्माके वाचक हैं। शिवसहस्रनाम, दुर्गासहस्रनाम, सूर्य्यसहस्रनाम, गणेशसहस्रनाम और विष्णुसहस्रनामके पाठ करनेसे सब नामोंकी एकता जानी जा सकती है।

† गयासुर।

‡ यज्ञमें जिस लकड़ीको रगड़कर अग्नि निकालते हैं।

§ भ्रमरूपी मेढ़क। × पृथ्वी।

रामहिं प्रिय पावनि तुलसीसी ।
तुलसिदास हित हिय हुलसीसी ॥
शिव प्रिय मेकल शैल सुतासी ।
सकल सिद्धि सुख संपति रासी ।
सद्‌गुण सुरगन अम्ब अदितिसी ।
रघुवर भगति प्रेम परमितिसी ॥
राम कथा मन्दाकिनी, चित्रकूट चित चारु ।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुवीर विहारु ।

योगभेद तथा यमवर्णन ।

सुकौशलपूर्ण क्रियाको योग कहते हैं, अर्थात् जीवकी आध्यात्मिक उन्नति करनेके जो जो उपाय शास्त्रोंमें वर्णन किये गये हैं वे सब योग कहाते हैं । योग क्रियाओंकी चार जातियां हैं, यथा—मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग । मन्त्रके जप और मूर्तिका ध्यान करते हुए जो साधन किया जाय उसको मन्त्रयोग कहते हैं । शास्त्रोंमें कहे हुए वीजमंत्र और देवताओंकी नानामूर्तियाँ सब विज्ञान और सत्यसे भरी हुई हैं, इसी प्रकारसे अपने अधिकारके अनुसार मन्त्रके जप और मूर्तिके ध्यान आदि क्रिया द्वारा मन्त्रयोगका साधन हुआ करता है । जिन साधनोंमें स्थूल शरीरका सम्बन्ध अधिक हो अर्थात् जिन क्रियाओंके द्वारा स्थूल शरीरको अपने अधीनमें लाकर सूक्ष्म शरीरकी उन्नति की जाय उसको हठयोग कहते हैं । इस शरीरमें कुण्डलिनी नामा प्रकृतिशक्ति तथा पुरुषरूपी शिव गुप्तरूपसे विद्यमान हैं । षटचक्र भेदन द्वारा उन दोनोंके संयोग करदेनेको लययोग कहते हैं और बुद्धिकी सहायतासे

जो साधन किया जाय उसको राजयोग कहते हैं। सबसे श्रेष्ठ राजयोगका वर्णन वेदान्त आदि शास्त्रोंमें किया गया है। इस प्रकारसे योगसाधनकी क्रिया चार विभागोंमें विभक्त है। योगके प्रधानतः आठ अङ्ग कहाते हैं, जिनके नाम यथा—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। जिनमें से यम दश हैं, यथा—

१। किसी जीवको कभी शरीर, मन और वचनके द्वारा क्लेश न पहुंचनेको अहिंसा कहते हैं।

२। सब प्राणियोंके हितकारी वाक्यको सत्य कहते हैं। जो विषय जैसा हो, उसको वैसा ही कह देनेको भी सत्य कहते हैं।

३। शरीर, मन और वचनके द्वारा पराये पदार्थोंमें अनिच्छाको अस्तेय कहते हैं।

४। सब स्थानोंमें और सब समयमें मन, वचन और शरीर द्वारा स्त्रीत्यागको ब्रह्मचर्य्य कहते हैं।

५। मन, वचन और शरीर द्वारा दुःखी जीवपर कृपा करनेको और उसकी सहायता करनेको दया कहते हैं।

६। मनको सदा निष्कपट रखनेको तथा वैसे वर्ताव करनेको आर्ज्जव कहते हैं।

७। प्रिय और अप्रिय सब कार्य्योंमें समभाव रखना और शक्ति रहनेपर भी अपकारीको अपकार न पहुंचानेको क्षमा कहते हैं।

८। धनका नाश और प्रियजनोंके वियोग आदि दुःखद विषय होनेपर भी चित्तको दृढ़ और स्थिर रखनेको धृति कहते हैं।

९। लोभके कारण अधिक भोजन न करना और विचार पूर्वक भोजन करना इसको मिताहार कहते हैं।

१०। शौच दो प्रकारके कहे गये हैं। एक बहिःशौच और दूसरा अन्तःशौच। मिट्टी और जलके द्वारा शरीरको शुद्ध रखने

से बाह्यशौचका साधन हुआ करता है और मनको पाप-वृत्तियोंसे बचानेको अन्तःशौच कहते हैं ।

इस प्रकारसे दश यमोंके पालन करनेसे मनुष्य योगी बन सकता है । यमसाधन श्रेष्ठ धर्म कहा जाता है । इसके साधनमें जितनी उन्नति साधक करता जाता है उतनी ही उसमें धर्म्मकी शक्ति बढ़ा करती है और उतना ही वह पुरुष श्रीपरमात्माकी कृपाका अधिकारी हुआ करता है ।

पुरुषार्थगीत ।

भारत आरत देखि नींद अब कैसे आती ।
भ्रातनको अब छोड़ि भोगमें क्यों मति माती ॥
वह है भारत यह, जाको सब जगने पूजा ।
वही हिमाचल अचल जासु सम और न दूजा ॥
यमुना सरयू आदि बहत मिलि वह मा गंगे ।
दीन पतित उद्धारहिं तारहिं तरल तरंगे ॥
सबहि वही पर नहिं है वैसी दशा हमारी ।
उद्यमहीन सो छीन लई विधि सम्पति सारी ।
कहां भरत बलिराम युधिष्ठर आदि ययाती ।
कहां पराशर व्यासदेव मानव शरयाती ॥
कहां पवनसुत भीम और अर्जुन महवीरा ।
कहां कृष्ण मुनि शाक्य अहो शङ्कर अतिधीरा ॥
अब रही अविद्या कलह मूढ़ता छाई ।
जहँ देखहु तहँ अति दुःखहि दुःख लखाई ॥
अब धर्म एकता साहस प्रेम बिसारी ।
तजि उद्यम सबको भई चाकरी प्यारी ॥

निज वासभूमिको प्रेम पुरातन त्यागे।
तजि उद्यम पुरुषार्थ भीख मँगन कहँ लागे॥
परवेष सजे परदेश गमन अभिलाषा।
पर रीति सीखकर भूलगये निज भाषा॥
परतोषन हित कुल शील धर्म्म तजि दीन्हे।
परपोषनको सर्वस्व आपनों अर्पण कीन्हे॥
पर स्वारथ हित पुरुषार्थ कियो बहु भारी।
पुरुषार्थमूल निज धर्म्म नीति तजिडारी॥
धन रत्न गये अब कांच भये गृह शोभा।
सहधर्मिणि सहचारिणि सबको मन लोभा॥
जगमोहन अपनो शिल्प सबहि विसराई।
पर-पटसे ढांकत तन मन लाज न आई॥
सार्वभौमता त्यागि धर्म्म उपधर्म्महि जानी।
परनिन्दा गृहफूट धर्म्मको मूलहि मानी॥
अब सुख सूरजको उदय नहीं तम हारी।
सब दिन रजनीसा अन्धकारमय भारी॥
निज पूर्वदशाको अपने मन महँ आनो।
यह हीन दशा अब एक बार अनुमानो॥
अब कितने दिन पुरुषार्थ त्यागि हे भाई।
रहु मेषपाल सम जननीको दुखदाई॥
सब क्लेश मूल पुरुषार्थ त्यागको जानो।
सब सम्पद मूल हरिभक्ति धर्म्म ही मानो॥
गहि धीरज धर्म्म पुरुषार्थ स्वार्थ संहारी।
अब उठहु भ्रात सब जागहु चेत सम्हारी॥ *

---

* यह गीत कण्ठस्थ करा दिया जावे। यह ललित भैरवी रागिनिमें गाने योग्य भी है। सब धर्म्मानुरागियोंको स्वदेश सेवा और स्वधर्मसेवा

पंचमहायज्ञ ।

ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ और नृयज्ञ ये पञ्च-महायज्ञ कहाते हैं। प्रतिदिन नियमके साथ वेद और वेद-सम्बन्धी शास्त्रोंके पाठ करनेको ब्रह्मयज्ञ कहते हैं। श्रीपरमात्माके प्रधान अंगरूप नाना देवताओंकी तृप्तिके अर्थ अग्निमें नियमके साथ प्रतिदिन आहुति देनेको देवयज्ञ कहते हैं। नाना प्रकारके प्राणियोंके कल्याणकी इच्छा करके देवताओंके द्वारा उनकी तृप्ति करनेके अर्थ वलि देनेको भूतयज्ञ कहते हैं। गोग्रास आदि भी भूतयज्ञमें ही समझे जाते हैं। अपने पितृगणकी तृप्तिके अर्थ नियमके साथ प्रतिदिन पिण्ड-दान और तर्पण करनेको पितृयज्ञ कहते हैं और अतिथिसेवा ही नृयज्ञ कहाता है। ये पञ्चमहायज्ञ गृहस्थोंको अवश्य करने योग्य हैं। और सब कर्म्मोंसे इन पांचों कर्म्मोंकी मुख्यता रहनेके कारण ये महायज्ञ कहाते हैं. अर्थात् भक्तिकाण्ड, कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्डके और जितने साधन नित्यकर्म्ममें रक्खे गये हैं उन सबोंमें इनकी प्रधानता रहनेके कारण इनको शास्त्रोंने महायज्ञ कहके वर्णन किया है। मनुष्यके इहलौकिक और पार-लौकिक कल्याण साधनके अभिप्रायसे जो साधन किया जाय उसको यज्ञ कहते हैं और मनुष्यजाति अथवा समष्टि जीवपुञ्जके कल्याणार्थ जो साधन किया जाय उसको महायज्ञ कहते हैं। महायज्ञकी महिमा सर्वोपरि है।

प्रथम ही इन पांचों यज्ञोंमें तीनों काण्डोंका साधन रक्खा

अवश्य करनी चाहिये। कालानुरूप धर्म्मसेवासे पितृसेवाके तुल्य और देशसेवासे मातृसेवाके तुल्य पुण्य प्राप्त होता है। काल पितृरूप और देश मातृरूप है।

गया है। दूसरा कारण यह है कि इनके साधन द्वारा साधककी आत्मोन्नतिके साथ ही साथ विश्वकी तृप्तिका साधन हुआ करता है। तीसरा कारण यह है कि इन महायज्ञोंके द्वारा मनुष्य अपने सब प्रधान कर्त्तव्य कर्म्मोंसे उऋण हुआ करता है। ब्रह्मयज्ञ द्वारा ऋषिऋण, देवयज्ञ द्वारा देवऋण, भूतयज्ञ द्वारा भूतऋण और पितृयज्ञ द्वारा पितृऋणसे साधक मुक्त हुआ करता है। यथार्थ तो यह है कि वैदिक-ज्ञान प्राप्तिके लिये मनुष्यमात्र ही पूज्यपाद ऋषिगणके निकट सदा ऋणी है। उसी प्रकार क्रमोन्नतिकी प्राप्तिके लिये मनुष्यगण देवताओं-के निकट ऋणी हैं और अपने जीवननिर्वाहके लिये तथा भोगोंकी प्राप्तिके लिये मनुष्यगण और सब भूतोंके निकट ऋणी हैं इसमें सन्देह ही क्या? एवं अपने पितृगणकी कृपा मनुष्यमात्रपर बहुत ही कुछ है; जितना विचारा जाय उतना ही माता पिता तथा अपने अन्यान्य पितृगणकी कृपाका ऋण अधिकसे अधिक ही प्रतीत हुआ करता है। इस कारण इन चारों यज्ञोंके द्वारा चार प्रधान ऋणोंसे साधकका मुक्त होना स्वतःसिद्ध है। उसी विचारशैलीके अनुसार मनुष्यमात्रका सम्बन्ध मनुष्य समाजसे होनेके कारण अपने स्थानपर आये हुए अतिथिकी सेवा करना केवल साधारण धर्म्म ही नहीं है किन्तु नृयज्ञके साधन द्वारा साधक एक बड़े भारी ऋणसे मुक्त हुआ करता है। वेद, स्मृति, पुराण और तन्त्र सब एकवाक्य होकर ऐसी आज्ञा देते हैं कि मनुष्यगण विना इन पञ्चमहायज्ञोंके साधन किये मनुष्यत्व पदके अधिकारी ही नहीं हो सकते। इस कारण गृहस्थमात्रको पञ्चमहायज्ञका साधन करना अवश्य कर्त्तव्य है।

प्रश्नोत्तरी रत्नमाला ।

को दारिद्री ? अहो अधिक जिहिं तृष्णा छाई ।
कहो कौन श्रीमान ? जिन्हें सन्तोष सदाई ॥
जीवत ही को मर्‍यो ? रहित उद्यमके जो नर ।
मरे पछे सुख देत कौन ? मिथ्या आशा वर ॥ १ ॥
कौन दुरत्तय पाश ? अहो ममता है फांसी ।
मद सम मोहत कौन ? सुनो कामिनि छविरासी ॥
अन्धनहूँ सों अन्ध कौन ? जे कामातुर नर ।
मौत कौन ? जो कुजस ? जियतको ? जासु सुयश वर॥२॥
को गुरु ? जो हित सिच्छक अहो ।
को शिष्य ? जिन्हे दृढ़ भक्ति गुरु ॥
को रोग ? महाभवव्याधि वह,
औषध ? ब्रह्मविचार कुरु ॥ ३ ॥

मूल ।

को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः,
श्रीमांश्च को यस्य समस्ततोषः ॥
जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमो यः,
का वा मृता स्यात्सुखदा दुराशा ॥ १ ॥
पाशो हि को यो ममताभिधानः,
सम्मोहयत्येव सुरेव का स्त्री ।
को वा महान्धो मदनातुरो यः,
मृत्युश्च को वाऽपयशः स्वकीयम् ॥ २ ॥
को वा गुरुर्यो हि हितोपदेष्टा,
शिष्यस्तु को वा गुरुभक्त एव ।

विषहू सों विष कौन ? विषय सबही हालाहल ॥
सदा दुखी नित कौन ? विषयरति लंपट जे खल ॥
ध्यान कौन जग मांहि ? जीव जो पर उपकारी।
कौन पूज्य ? जो ज्ञान दृष्टिमें तत्त्व निहारी ॥४॥
लघुताकी जड़ कौन ? मांगिवो सो नर छोटो।
गुरुताको कह मूल ? नहीं मांगे सो मोटो ॥
जगमें जनम्यो कौन ? फेर जो जनमत नाहीं।
अमर कहावे कौन ? मरत ना जे जग माहीं ॥५॥
सत्रुहुसों अति वड़ो महारिपु कौन सतावै ?
काम क्रोध मद लोभ अनृत तृष्णा जिहिं छावै ॥
कासों मन नहिं भरत ? विषय वासना नहिं पूरत।
कहा दुःखको मूल ? अहो ममता चित चूरत ॥६॥

को दीर्घरोगो भव एव साधो,
किमौषधं तस्य विचार एव ॥ ३ ॥
विषाद्विषं किं विषयाः समस्ता,
दुःखी सदा को विषयानुरागी।
धन्योस्ति को यस्तु परोपकारी,
कः पूजनीयो ननु तत्त्वद्रष्टा ॥ ४ ॥
लघुत्वमूलं च किमर्थितैव,
गुरुत्वबीजं यदयाचनं हि।
जातोस्ति को यस्य पुनर्न जन्म,
को वा मृतो यस्य पुनर्न मृत्युः ॥ ५ ॥
शत्रोर्महाशत्रुतरोस्ति को वा,
कामः सकोपानृतलोभतृष्णः।
न पूर्य्यते को विषयैः स एव,
किन्दुःखमूलं ममताभिधानः ॥ ६ ॥

कौन चोर है ? असद् वासना भारी तस्कर ।
सभामाहिं घबराहिं कौन ? जे कुपढ़ मूढ़ नर ॥
माता सम सुख देत कौन ? जो सुन्दर विद्या ।
बढ़त लुटाए कहा ? पठित विद्या जो सद्या ॥ ७ ॥
चपलासम को चपल ? आयु तिय धन मन जोवन ।
परम दान है कौन ? पात्र आछेमें वोअन,
प्रान कण्ठगत भये कहा करनो नहिं करनो ?
करिय देशहित धर्म्म, पापबासना बिसरनो ॥ ८ ॥

दानधर्म्म ।

सनातनधर्मके तीन मूल विभाग यज्ञ, तप और दानमेंसे दानधर्म तृतीय स्थानीय होने पर भी वर्त्तमान कालके लिये वह सबसे परमावश्यकीय है। धर्मबुद्धिसे अपने किसी पदार्थको निज स्वत्व छोड़कर किसी अन्य पुरुषको देनेसे दान-धर्मका साधन होता है। शास्त्रोंमें कहा है कि अन्ययुगमें धर्मके अन्यान्य अङ्गोंसे अधिक कल्याण हुआ करता था; परन्तु इस कलियुगमें जीवगणके लिये केवल दानधर्म ही

के दस्यवः सन्ति कुवासनाख्याः,
संक्षोभते कः सदसि ह्यविद्यः ॥
मातेव का या सुखदा सुविद्या,
किमेधते दानवशात्सुविद्या ॥ ७ ॥
विद्युच्चलं किं धनयौवनायु-
र्दानं परं किं च सुपात्रदत्तम् ।
कंठं गतैरप्यसुभिर्न कार्य्यम्,
किं किं विधेयं दुरितं हि धर्मम् ॥ ८ ॥

प्रधान आश्रय है। यज्ञधर्म्मके तथा तपोधर्म्मके साधन करनेमें नाना प्रकारके शारीरिक, वाचनिक और मानसिक कष्ट सहने पड़ते हैं, परन्तु दानधर्म्मके साधनमें कुछ भी क्लेश सहनेकी आवश्यकता नहीं केवल अपने एक पदार्थको रागरहित होकर अन्यको दान करदेनेसे ही इस धर्म्मका साधन होता है। इन्हीं विचारोंसे पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षिगणने "दानमेकं कलौ युगे" इत्यादि वचनोंके द्वारा दान-धर्म्मके ही साधन करनेके लिये वर्त्तमान कालके मनुष्योंको उत्साहित किया है।

वर्त्तमानकालके साथ दान-धर्म्मका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रहनेके कारण ही आर्य्यजातिके दानधर्मके विगाड़से इस जातिकी उपस्थित अति हीन दशा हो गई है। श्रीभगवान्‌जी-ने निज मुखसे आज्ञा की है कि, दान सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे त्रिविध माना गया है। उन्नत दान यह है कि, जब दाता केवल कर्त्तव्यबुद्धिसे दान करे और यह समझे कि, दान देनाही हमारा धर्म्म है और उत्तम देश, उत्तम काल और उत्तम पात्रका विचार रक्खे और दानके ग्रहण करने वालेने कुछ भी उपकार न किया हो। इस प्रकारसे ऐसे गृही-ताको दान करनेसे सात्त्विक दान कहाता है। जिस दानके करनेमें वदला लेने या फलकी इच्छा होवे और दान करते समय चित्तमें जो क्लेश मानकर दान किया जाय, वह राजस दान कहाता है। और देश काल पात्रके विना विचारे अवज्ञाके साथ जो दान किया जाय, वह तामस दान कहाता है। अव भी सनातनधर्म्मियोंमें जितना दानधर्म्मका प्रचार है, उतना दानधर्मका प्रचार और किसी धर्म्ममें नहीं देखनेमें आता। परन्तु सनातनधर्म्मियोंमें अज्ञानकी वृद्धि हो जानेके कारण वे जो कुछ दान करते हैं, सो प्रायः विचाररहित होकर करते हैं। आज दिन हमारे समाजमें जो दानकी

रीति देखनेमें आती है, उसको विचारनेसे यह स्पष्टरूपसे विदित हो सकेगा कि, आर्य्यसन्तानगण प्रायः तामसिक दान करते हैं और कोई कोई राजसिकदान किया करते हैं। परन्तु सात्त्विकदानकी रीति तो हमारे समाजसे एकवार लुप्तप्राय ही हो गई है। जब तक सनातनधर्म्मी नृपति तथा प्रजागण अपने दानधर्मको सुधार कर देश काल और पात्रके विचार द्वारा अपने धनको उत्तम दानधर्म्ममें नहीं व्यय करना सीखेंगे, तब तक न तो उनकी आध्यात्मिक उन्नति होगी, न इहलोक और परलोकके सुखके अधिकारी होंगे और न वे अपने धर्म्म और देशकी उन्नति ही कर सकेंगे। इस कारण सबसे पहिले आर्य्यसन्तानगणको सात्त्विकदानकी महिमा भलीभाँति समझकर उसका अभ्यास करना उचित है।

सनातन धर्मकी पुस्तकें।

धर्मकल्पद्रुम।

[श्रीस्वामी दयानन्द विरचित]

यह हिन्दूधर्मका अद्वितीय और परमावश्यक ग्रन्थ है। हिन्दुजातिकी पुनरुन्नतिके लिये जिन जिन आवश्यकीय विषयोंकी जरूरत है, उनमेंसे सबसे बड़ी भारी जरूरत एक ऐसे धर्मग्रन्थकी थी कि जिसके अध्ययन अध्यापनके द्वारा सनातनधर्मका रहस्य और उसका विस्तृत स्वरूप तथा उसके अङ्ग उपाङ्गोंका यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो सके और साथ ही साथ वेद और सब शास्त्रोंका आशय तथा वेदों और सब शास्त्रोंमें कहे हुए विज्ञानोंका यथाक्रम स्वरूप जिज्ञासुको भलीभांति विदित हो सके। इसी गुरुतर अभावको दूर करनेके लिये भारतके प्रसिद्ध धर्मवक्ता और श्रीभारतधर्ममहामण्डलस्थ उपदेशक महाविद्यालयके दर्शनशास्त्रके अध्यापक श्रीमान् स्वामी दयानन्दजी महाराजने इस ग्रन्थका प्रणयन किया है। इसमें वर्तमान समयके आलोच्य सभी विषय विस्तृतरूपसे दिये गये हैं। इस ग्रंथसे आजकल अशास्त्रीय और विज्ञानरहित धर्मग्रंथों और धर्मप्रकारके द्वारा जो हानि हो रही है, वह सब दूर होकर यथार्थरूपसे सनातन वैदिक धर्मका प्रचार होगा। इस ग्रंथरत्नमें साम्प्रदायिक पक्षपातका लेशमात्र भी नहीं है और निष्पक्षरूपसे सब विषय प्रतिपादन किये गये हैं; जिससे सकल

प्रकारके अधिकारि कल्याण प्राप्त कर सकें। इसमें और भी एक विशेषता यह है कि, हिन्दु शास्त्रके सभी विज्ञान शास्त्रीय प्रमाणों और युक्तियोंके सिवाय, आजकलकी पदार्थ विद्या [Science] के द्वारा भी प्रतिपादित किये गये हैं, जिससे आजकलके नवशिक्षित पुरुष भी इससे लाभ उठा सकें। इसके सात खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम खण्डका मूल्य २), द्वितीयका १॥), तृतीयका २), चतुर्थका २), पंचमका २), षष्ठका १॥) और सप्तमका २) है। इसके प्रथम दो खण्ड बढ़िया कागजपर भी छापे गये हैं। और दोनों ही एक बहुत सुन्दर जिल्दमें बांधे गये हैं। मूल्य ५) है। आठवां खंड यंत्रस्थ है।

प्रवीण दृष्टिमें नवीन भारत।

[श्रीस्वामी दयानन्द सम्पादित]

इस ग्रंथमें आर्यजातिका आदिका वासस्थान, उन्नतिका आदर्श निरूपण, शिक्षादर्श, आर्यजीवन, वर्णधर्म आदि विषय वैज्ञानिक युक्ति तथा शास्त्रीय प्रमाणोंके साथ वर्णित हैं। यह ग्रन्थ धर्मशिक्षाके अर्थ बी० ए० क्लासका पाठ्य है। इसके दो खण्ड हैं। प्रत्येकका मूल्य २)

नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत।

[श्रीस्वामी दयानन्द सम्पादित]

भारतका प्राचीन गौरव और आर्यजातिका महत्त्व जाननेके लिये यह एक ही पुस्तक है। इसका द्वितीय संस्करण परिवर्द्धित और सुन्दर हो कर छप चुका है। यह ग्रन्थ भी बी० ए० क्लासका पाठ्य है। मूल्य १)

साधनचन्द्रिका।

[श्रीस्वामी दयानन्द विरचित]

इसमें मंत्रयोग, हठयोग, लययोग और राज योग इन

चारों योगोंका संक्षेपमें अति सुन्दर वर्णन किया गया है। यह ग्रंथ प्रथम वार्षिक एफ० ए० क्लासका पाठ्य है। मूल्य १॥।)

शास्त्रचन्द्रिका।

अज्ञाननाशिनी और ज्ञानजननीको विद्या कहते हैं। विद्या दो भागोंमें विभक्त है, एक परा विद्या और दूसरी अपरा विद्या। गुरुमुखसे प्राप्त होनेवाली ब्रह्मविद्या परा विद्या कहलाती है। परा विद्या ग्रंथोंसे नहीं प्रकाशित होती, ग्रंथोंसे प्रकाशित होने वाली विद्याको अपरा विद्या कहते हैं। अपरा विद्या भी पुनः दो भागोंमें विभक्त है, यथा—लौकिक विद्या और पारलौकिक विद्या। शिल्प, कला, वाणिज्य, पदार्थ-विद्या, सायन्स, राजनीति, समाजनीति, युद्धविद्या, चिकित्साविद्या आदि सब लौकिक विद्याके अन्तर्गत हैं और वेद और वेदसम्मत दर्शन पुराणादि शास्त्र सब पारलौकिक विद्याके अन्तर्गत माने गये हैं। पारलौकिक विद्याके दिग्दर्शनार्थ यह ग्रन्थ इस विचारसे बनाया गया है कि, जिससे विद्यार्थियोंको धर्म-शिक्षा प्राप्त करनेमें सहायता प्राप्त हो सके। मूल्य १॥) रूपया।

धर्मचन्द्रिका।

[श्रीस्वामी दयानन्द विरचित]

एन्ट्रेन्स क्लासके बालकोंके पाठनोपयोगी उत्तम धर्मपुस्तक है। इनमेंसे सनातनधर्मका उदार सार्वभौम स्वरूपवर्णन, यज्ञ, दान, तप आदि धर्माङ्गोंका विस्तृत वर्णन, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, नारीधर्म, आर्यधर्म, राजधर्म तथा प्रजाधर्मके विषयमें बहुत कुछ लिखा गया है। कर्मविज्ञान, संध्या, पञ्चमहायज्ञ आदि नित्यकर्मोंका वर्णन, षोड़श संस्कारोंके पृथक् पृथक् वर्णन और संस्कारशुद्धि तथा क्रियाशुद्धि द्वारा मोक्षका

यथार्थ मार्ग निर्देश किया गया है। इस ग्रन्थके पाठसे छात्रगण धर्मतत्त्व अवश्य ही अच्छी तरहसे जान सकेंगे। मूल्य १)

आर्य्य गौरव।

[श्रीस्वामी दयानन्द विरचित]

आर्य्यजातिका महत्त्व जाननेके लिये एक ही पुस्तक है। यह ग्रन्थ स्कूलकी ९ वीं तथा १० वीं कक्षाका पाठ्य है। मूल्य ॥)

आचारचन्द्रिका।

[श्रीस्वामी दयानन्द विरचित]

यह भी स्कूलपाठ्य सदाचारसम्बन्धीय धर्मपुस्तक है। इसमें प्रातःकालसे लेकर रात्रिमें निद्राके पहले तक क्या क्या सदाचार किस लिये प्रत्येक हिन्दुसन्तानको अवश्यही पालने चाहिये, इसका रहस्य उत्तम रीतिसे बताया गया है और आधुनिक समयके विचारसे प्रत्येक आचारपालनका वैज्ञानिक कारण भी दिखाया गया है। यह ग्रन्थ बालकोंके लिये अवश्य ही पाठ करने योग्य है। यह स्कूलकी ८ वीं कक्षाका पाठ्य है। मूल्य ॥)

नीतिचन्द्रिका।

[श्रीस्वामी दयानन्द विरचित]

मानवीय जीवनका उन्नत होना नीतिशिक्षापर ही अवलम्बित होता है। कोमलमति बालकोंके हृदयोंपर नीतितत्त्व खचित करनेके उद्देश्यसे यह पुस्तिका लिखी गई है। इसमें नीतिकी सब बातें ऐसी सरलतासे समझाई गई हैं कि, इस एकके ही पाठसे नीति शास्त्रका ज्ञान हो सकता है। यह स्कूलकी ७ वीं कक्षाका पाठ्य है। मूल्य ॥)

चरित्रचन्द्रिका ।

[सम्पादक पं० गोविन्दशास्त्री दुगवेकर ।]

इस ग्रन्थमें पौराणिक, ऐतिहासिक और आधुनिक महापुरुषोंके सुन्दर मनोहर विचित्र चरित्रवर्णित हैं। यह ग्रन्थ स्कूलकी ६ ठी कक्षाका पाठ्यहै। प्रथम भागका मूल्य १) और दूसरे भागका १।)

धर्मप्रश्नोत्तरी ।

[श्रीस्वामी दयानन्द विरचित]

सनातनधर्मके प्रायः सब सिद्धान्त अतिसंक्षिप्त रूपसे इस पुस्तिकामें लिखे गये हैं। प्रश्नोत्तरीकी प्रणाली ऐसी सुन्दर रक्खी गई है कि छोटे बच्चे भी धर्मतत्त्वोंको भलीभांति हृदयङ्गम कर सकेंगे। भाषा भी अति सरल है। यह ग्रन्थ स्कूलकी ४ थी कक्षाका पाठ्य है। कागज और छपाई बढ़िया होनेपर भी मूल्य केवल ।) मात्र है।

परलोक-रहस्य ।

[श्रीमान् स्वामी दयानन्द विरचित]

मनुष्य मर कर कहां जाता है, उसकी क्या गति होती है, इस विषयपर वैज्ञानिक युक्ति तथा शास्त्रीय प्रमाणोंके साथ विस्तृत रूपसे वर्णन है। मूल्य ।)

चतुर्दशलोक रहस्य ।

[श्रीमान् स्वामी दयानन्द विरचित ।]

स्वर्ग और नरक कहां और क्या वस्तु है, उनके साथ हमारे इस मृत्युलोकका क्या सम्बन्ध है इत्यादि विषय शास्त्र और युक्तिके साथ वर्णित किये गये हैं। आजकल स्वर्ग नरक आदि लोकोंके विषयमें बहुत संशय फैल रहा है। श्रीमान्

स्वामीजी महाराजने अपनी स्वाभाविक सरल युक्तियोंके द्वारा चतुर्दश लोकोंका रहस्य वर्णन करते हुए उस सन्देहका अच्छा समाधान किया है। मूल्य ।)

सती-चरित्र-चन्द्रिका।

[श्रीमान् पं० गोविन्दशास्त्री दुगवेकर सम्पादित]

इस पुस्तकमें सीता, सावित्री, गार्गी, मैत्रेयी आदि ४४ सती स्त्रियोंके जीवनचरित्र लिखे गये हैं। मूल्य २)

नित्य-कर्म-चन्द्रिका।

इस ग्रंथमें प्रातःकालसे लेकर रात्रिपर्यन्त हिन्दुमात्रके अनुष्ठान करने योग्य नित्य कर्म वैदिक तांत्रिक मन्त्रोंके साथ भलीभांति वर्णित किये गये हैं। मूल्य ।)

धर्मसोपान।

यह धर्मशिक्षा विषयक बड़ी उत्तम पुस्तक है। बालकोंको इससे धर्मका साधारण ज्ञान भलीभांति हो जाता है। यह पुस्तक क्या बालक-बालिका, क्या वृद्धस्त्री-पुरुष, सबके लिये बहुत ही उपकारी है। धर्मशिक्षा पानेकी इच्छा करनेवाले सज्जन अवश्य इस पुस्तकको मंगावें। यह स्कूलकी ५ वीं कक्षाका पाठ्य है। मूल्य ।) आना।

धर्म-कर्म-दीपिका।

इस पुस्तकमें कर्मका स्वरूप, कर्मके भेद, संस्कारके लक्षण और भेद, वैदिक संस्कारोंका रहस्य, विविध कर्मका वैज्ञानिक स्वरूप, कर्म सम्बन्धसे मुक्ति, कर्मके साथ धर्मका मिश्र सम्बन्ध, धर्मरूप कल्पद्रुमका विस्तृत वर्णन, वर्णाश्रमधर्मकी महिमा और विज्ञान, उपासना रहस्य, उपासनाकी मूलभित्ति-रूप पीठ रहस्य, धर्म कर्म और यज्ञ शब्दोंका वैज्ञानिक-रहस्य और सदाचारका विज्ञान और महत्त्वप्रतिपादन किया

गया है, यह ग्रन्थ मूल और सुस्पष्ट हिन्दी-अनुवाद सहित शास्त्रीय प्रमाण देकर छापा गया है, यह ग्रन्थरत्न प्रत्येक सनातन धर्मावलम्बीके लिये उपादेय है। मूल्य ॥)

सदाचारसोपान।

यह पुस्तक कोमल मति बालक बालिकाओंकी धर्मशिक्षाके लिये प्रथम पुस्तक है। यह स्कूलकी तीसरी कक्षाका पाठ्य है मूल्य -) एक आना।

कन्याशिक्षासोपान।

कोमलमति कन्याओंको धर्मशिक्षा देनेके लिये यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। मूल्य -)

ब्रह्मचर्यसोपान।

ब्रह्मचर्य्यव्रतकी शिक्षाके लिये यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है। सब ब्रह्मचारी आश्रम, पाठशाला और स्कूलोंमें इस ग्रन्थकी पढ़ाई होनी चाहिये। मूल्य ।) आना।

राजशिक्षा सोपान।

राजा महाराजा और उनके कुमारोंको धार्मिक शिक्षा देनेके लिये यह ग्रन्थ बनाया गया है, परन्तु सर्व साधारणकी धर्म्मशिक्षाके लिये भी यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है, इसमें सनातनधर्मके अङ्ग और उसके तत्त्व अच्छी तरह बताये गये हैं। मूल्य ≡) तीन आना।

साधनसोपान।

यह पुस्तक उपासना और साधनशैलीकी शिक्षा प्राप्त करनेमें बहुत ही उपयोगी है। इसका बंगला अनुवाद भी छप चुका है। बालक बालिकाओंको पहलेसे इस पुस्तकको पढ़ाना चाहिये। यह पुस्तक ऐसी उपकारी है कि, बालक और वृद्ध समानरूपसे इससे साधनविषयक शिक्षा लाभ कर सकते हैं। मूल्य ।) चार आना।

शास्त्रसोपान ।

सनातनधर्मके शास्त्रोंका संक्षेप सारांश इस ग्रन्थमें वर्णित है। सब शास्त्रोंका कुछ विवरण समझनेके लिये प्रत्येक सनातनधर्म्मावलम्बीके लिये यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। मूल्य।) चार आना।

स्तोत्र कुसुमाञ्जलि।

इसमें पंचदेवता, अवतार और ब्रह्मकी स्तुतियोंके साथ साथ आजकलकी आवश्यकतानुसार धर्मस्तुति, गङ्गादि पवित्र तीर्थोंकी स्तुति, वेदान्त प्रतिपादक स्तुतियां और काशीके प्रधान देवता श्रीविश्वनाथादिकी स्तुतियां हैं। मूल्य।) आना।

सरल बङ्गला-शिक्षा।

पं० गोपालचन्द्र चक्रवर्ती वेदान्तशास्त्री प्रणीत ।

हिन्दी भाषा भाषियोंमें बंगला सीखनेके लिये उत्कट आकांक्षा देखी जाती है। उसकी पूर्तिके लिये यह पुस्तक लिखी गई है। यह पुस्तक पांचखण्डोंमें पूर्ण है। प्रथम खण्डमें "वर्णपरिचय" और "अनुवाद" द्वितीय खण्डमें "शब्दमाला" तृतीय खण्डमें "व्याकरण" चतुर्थ खण्डमें "कथितभाषा" और पञ्चम खण्डमें "मुहावरा" और "कहावत" दिये गये हैं। अतः इस एक ही पुस्तकके पढ़नेसे बंगला पढ़ना लिखना और बोलना बिना किसीकी सहायताके लिये ही आसानीसे आ जायगा। २६८ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य १) है।

मिलनेका पता:—निगमागमबुकडिपो, सिण्डिकेट भवन,
स्टेशन रोड, बनारस सिटी।